।।卐।। श्रीहरये नमः ।।卐।।

पण्डित गङ्गाधर पाठक 'मैथिल'

।। पौराणिक सूतजी जन्मना ब्राह्मण थे ।।

व्यासजी के शिष्य लोमहर्षण या रोमहर्षण सूत जातितः सूत नहीं थे, बल्कि उच्चकोटि के ब्राह्मण थे । उनका 'सूत' यह यौगिक उपनाम या उपाधि है । वे अपने पौराणिक प्रवचनों के द्वारा श्रोताओं को आनन्दित किया करते थे, जिससे उनके रोङ्गटे खड़े हो जाते थे अथवा व्यासजी के प्रवचनों को सुनकर स्वयं ही इनके लोम हर्षित हो जाते थे, इसीलिये ये लोमहर्षण नाम से प्रसिद्ध हुए । नाम में व्युत्पत्ति का पार्थक्य होने पर भी इनके ब्राह्मण होने में कोई सन्देह नहीं । पुराणप्रमाणानुसार यज्ञकुण्ड से इनकी उत्पत्ति हुई थी । ऐसे विषयों में पुराण-महाभारतादि की प्रामाणिकता ही महत्त्वपूर्ण होती है ।

'हरिवंशपुराण' जो महाभारत का खिलरूपेण अन्तिम भाग है, उसके १।४थे श्लोक में 'सौति' शब्द आया है । सामान्यतया सूतपुत्र को 'सौति' कहा जाता है । इसपर महाभारत के महाविद्वान् टीकाकार श्रीनीलकण्ठजी ने अभिप्राय प्रकट किया है, देखें- ''सूतः- अग्निकुण्डसमुद्भूतः सूतः निर्मलमानसः इति पौराणिकप्रसिद्धः अग्निजः लोमहर्षणः, तस्य पुत्रः सौतिः उग्रश्रवाः, न तु 'ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातः सूतः' इति स्मृत्युक्तः, तद्धितानर्थक्यापत्तेः'' अर्थात् पौराणिक सूत की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई है, अतः अग्निकुण्ड से प्रसूत (षूञ् प्राणिप्रसवे) उत्पन्न होने के कारण ही 'सूत' नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई । यहाँ सूत जाति नहीं है, अन्यथा सूतजाति में उत्पन्न को 'सौति' न कहकर 'सूत' ही कहा जाता; क्योंकि जाति में पुत्रत्व व्यवहार न होकर व्यक्ति में ही होता है । ब्राह्मणजाति के पुत्र को तद्धित में 'ब्राह्मणि' न कहकर 'ब्राह्मण' ही कहा जाता है । सूतजाति वाले पुरुष के पुत्ररूप में प्रसिद्ध होने पर भी 'कर्ण' को कहीं भी 'सौति' न कहकर ''नाहं वरयामि सूतम्'' (महाभारत १।१८९।२३) इस प्रकार 'इञ्' प्रत्यय के योग से लोमहर्षण सूत के पुत्र को 'सौति' कहा गया है । इससे 'सौति' सूतजाति नहीं अपितु किसी व्यक्तिविशेष का नाम ही सिद्ध होता है ।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ब्रह्मखण्ड १०।१३४-१३५- ''कश्चित्पुमान् ब्रह्मयज्ञे यज्ञकुण्डात्समुत्थितः । स सूतो धर्मवक्ता च मत्पूर्वपुरुषः स्मृतः ।। पुराणं पाठयामास तं च ब्रह्मा कृपानिधिः । पुराणवक्ता सूतश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः ।।'' के अनुसार भी यही सिद्ध होता है । इसी प्रकार शिवपुराण वायवीयसंहिता उत्तरभाग १।९ में सौति ने अपने पिता को यज्ञकुण्ड से उत्पन्न कहा है, पुनः पौराणिक सूत के लिये सूतजाति का प्रश्न ही नहीं उठता । श्रीमद्भागवत आदि में कुछ स्थानों पर जो 'सौति' को सूत कहा गया है, वहाँ पर सूतजाति की कारणता न होकर 'जनक' आदि के समान औपाधिक सूत का ही प्राधान्य है । जैसे जनक के उत्तराधिकारी 'सीरध्वज' आदि भी जनक नाम से ही प्रसिद्ध हुए, आद्य शङ्कराचार्य के उत्तराधिकारी भी 'शङ्कराचार्य' ही कहे जाते हैं; वैसे ही यहाँ भी 'सूत' उपाधि है ।

स्मृतिप्रमाण के अनुसार ''क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः'' क्षत्रिय से विप्रकन्या में उत्पन्न सन्तान को जाति से सूत कहा जाता है, जो प्रतिलोमज वर्णसङ्कर कहलाता है । यदि लोमहर्षण सूतजाति के वर्णसङ्कर होते तो श्रीमद्भागवत १०।७८।३१-३२ के अनुसार श्रीबलदेवजी को उसके वध में ब्रह्महत्या नहीं कही जाती; यथा-

''अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा । योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥
यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन । चरिष्यति भवाँल्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥''

जिस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिरामायण २।६३।५३ में वर्णसङ्कर श्रवणकुमार ने श्रीदशरथजी से कहा था कि- ''ब्रह्महत्याकृतं पापं हृदयादपनीयताम् । न द्विजातिरहं राजन् माऽभूत्ते मनसो व्यथा ॥ हे राजन् ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मैं वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न वर्णसङ्कर हूँ- ''शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप'' (वा.रा. २।६३।५१) अतः मेरे मारने से ब्रह्महत्या का भय मन से हटा दीजिए । इस प्रकार प्रतिलोमज सूत की हत्या करने पर भी बलरामजी को ब्रह्महत्याजन्य प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । अतः स्पष्ट होता है कि सूतजी ब्राह्मण ही थे । महाभारत आदिपर्व के चतुर्थ अध्याय में श्रीनीलकण्ठजी ने भी सूतजी को ब्राह्मण ही बताया है ।

बलदेवजी ने जो श्रीमद्भागवत १०।७८।२४ में- ''कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः'' सूतजी के लिये प्रतिलोमज शब्द का प्रयोग किया है, वह केवल उनके तिरस्कार के लिये ही किया है । जैसे शेषावतार बलरामजी के आगे मुनियों ने उठकर प्रणाम किया था (भागवत १०।७८।२१)- ''अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन्'' परन्तु सूतजी ने प्रत्युत्थानाभिवादन नहीं किया- ''अप्रत्युथायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम्'' (१०।७८।२३) इसीलिये वे तिरस्कार के पात्र हुए । जैसे अवतार, सुपात्र, राक्षस आदि शब्द कदाचित् विपरीतलक्षणा से कुत्सित अर्थों में प्रयुक्त किये जाते हैं; वैसे ही प्रतिलोमज वर्णसङ्कर का अभिधायक सूत जैसा 'सूत' शब्द तिरस्कार के लिए ही प्रतिलोमज अर्थ में प्रयुक्त किया गया । यद्यपि प्रतिलोमज कहने का एक विशेष रहस्य भी है; वायुपुराण १।१।२९-३०- ''वैन्यस्य तु पृथोर्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः । सुत्यायामभवत्सूतः प्रथमं वर्णवैकृतम् ॥
ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः । जुहावेन्द्राय दैवेन ततः सूतो व्यजायत ॥''

पुनः वायुपुराण १।१।३२ के अनुसार वेन के पुत्र महाराज पृथु के यज्ञ में 'सुत्या' (यज्ञ की अभिषव भूमि) में सूत उत्पन्न हुए, जो एक प्रकार का वर्णविकार था- ''शिष्यहव्येन सम्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः । अधरोत्तरचारेण यज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥'' क्षत्रिय शिष्य इन्द्र की हवि से गुरु ब्राह्मण बृहस्पति की हवि दब गई, इससे ही सूत उत्पन्न हुए । शिष्य क्षत्रिय इन्द्र की हवि से गुरु ब्राह्मण बृहस्पति की हवि दब जाने से अर्थात् निम्नवर्ण वाले शिष्य की हवि ऊपर उच्चवर्ण वाले गुरु की हवि नीचे हो जाने से यह प्रतिलोमज रहस्यात्मक वर्णविकार हुआ । यज्ञविज्ञान के रहस्यवेत्ता इस तथ्य को जानते हैं ।

अतः स्पष्ट हुआ कि पौराणिक सूतजी जातिसूत नहीं थे, 'सुत्या' यज्ञाभिषव भूमि अर्थात् यज्ञकुण्ड से ही उत्पन्न हुए थे । महाराज पृथु का यज्ञ हो रहा था तब अग्नि में इन्द्रदेव एवं देवगुरु बृहस्पति दोनों की हवि डाली गई; इससे सूतजी उत्पन्न हुए । इससे यज्ञकर्म की अतिशय वैज्ञानिकता सिद्ध होती है । सूत की वर्णसङ्करता की प्रसिद्धि का कारण भी यही है कि देवताओं में इन्द्र को क्षत्रिय एवं बृहस्पति को ब्राह्मण बताया गया है; जैसे (शतपथब्राह्मण ५।१।१।११) में- ''स वा एष ब्राह्मणस्यैव यज्ञः, यदेतेन बृहस्पतिरयजत । ब्रह्म हि बृहस्पतिः, ब्रह्म हि ब्राह्मणः। अथो राजन्यस्य यदेतेन इन्द्रोऽयजत। क्षत्रँ हि इन्द्रः । क्षत्रँ राजन्यः ।'' तब क्षत्रियवर्ण शिष्य इन्द्र के चरु से ब्राह्मण बृहस्पति के चरु को अभिभूत हो जाने से उसकी सङ्करता से उत्पन्न सूत क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न 'सूत' के समान हो गया।

सूतजाति में भी क्षत्रिय के अवर वर्ण होने से अपनी अपेक्षा उच्च वर्णवाली ब्राह्मणी में आधान करके प्रतिलोमता से ब्राह्मणत्व को अभिभूत करता है । यहाँ सूतजी के प्रसङ्ग में प्रत्यक्षतः तो ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि न कोई साक्षात् क्षत्रिय मनुष्य था, न ही कोई ब्राह्मणजाति की साक्षात् मानुषी स्त्री थी । अतः अयोनिज होने के कारण 'पौराणिक सूतजी' सूतजाति वाले नहीं थे, किन्तु उसके कुछ सादृश्यवशात् उपचार से कहीं कहीं विलोमज अथवा प्रतिलोमज कहे गये ।

ब्राह्मणरूप अग्नि ''अग्निर्वै ब्राह्मणः इति श्रुतिः'' से उत्पन्न होने के कारण भी सूतजी का ब्राह्मण होना सिद्ध है । वास्तविक सङ्कर होने पर तो वे ''अस्य ब्रह्मासनं दत्तम्'' (भागवत १०।७८।३०) ब्रह्मासन के योग्य ही नहीं होते । श्रीमद्भागवत १।१।५ की वंशीधरी टीकोद्धृत वचन के अनुसार- ''व्यासासनोपदेशाच्च शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् । विप्रस्यैवाधिकारोऽस्ति व्यासासनसमाक्रमे ॥ धर्माणां श्रुतिगीतानामुपदेशे तथा द्विजः ।'' पुनः पद्मपुराणस्वर्गखण्ड ६२।५८ के अनुसार- ''ब्राह्मणं वा पुरस्कृत्य ब्राह्मणेन च कीर्त्तितम् । पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवानलम् ॥'' भविष्यपुराण २।१।७ के अनुसार-

ब्राह्मणं वाचकं विद्यान्नान्यवर्णजमादरात् । श्रुत्वाऽन्यवर्णजाद्राजन् वाचकान्नरकं व्रजेत् ॥
न शूद्रः कथयेद्धर्मांस्तप अध्यापने तथा । नैहिकत्वं परत्वं च न शुभं न परां गतिम् ॥

कौशिकसंहितान्तर्गत भागवतमाहात्म्य के अनुसार-

ब्राह्मणादिषु सर्वेषु ग्रन्थार्थं चार्पयन्निव । य एवं वाचयेद्ब्रह्मन् स विप्रो व्यास उच्यते ॥
विप्रो वक्ता सुधीः कार्यो विशुद्धोभयवंशजः । इतिहासपुराणानां विप्रोऽन्यो धर्महानिकृत् ॥
यावद्विप्रगतं शास्त्रं शास्त्रत्वं तावदेव हि । विप्रेतरगतं शास्त्रमशास्त्रत्वं विदुर्बुधाः ॥

इत्यादि पुराणवचनानुसार पुराणों का श्रवण भी ब्राह्मणपुरस्सर ही होता है, पुनः पुराणवक्ता के रूप में तो ब्राह्मणेतर का अधिकार कथमपि सम्भव ही नहीं है । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने भी श्रीरामचरितमानस में यही कहा है- ''उभय लोक निज हाथ नसावहि'' आदि.....

पुराणवक्ता के उपर्युक्त लक्षणों में सर्वत्र पुंल्लिङ्ग विप्र अथवा ब्राह्मण शब्द का प्रयोग होने से तदितर वर्णत्रय, स्त्री, नपुंसकों एवं गृहस्थेतरों का भी कथाव्यास में अनधिकार ही सिद्ध होता है । परन्तु वर्त्तमान में कथावाचक या कर्मकाण्डी आदि बहुत से ब्राह्मण भी अपनी पारम्परिक उपाधि शर्मा, मिश्र, उपाध्याय, पाठक, त्रिपाठी, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि का परित्याग करके केवल अमुकशास्त्री, अमुकाचार्य और अमुकदास आदि लिखने में ही गौरव का अनुभव कर रहे हैं; जिससे उनके ब्राह्मण या ब्राह्मणेतर होने का मौलिक परिचय ही समाप्त होता चला जा रहा है, यह परिणाम में बहुत भयङ्कर अनर्थकारी सिद्ध होगा । उलटे, कुछ धर्मोपदेशक महाशय अपने ब्रह्मचारी या गृहस्थ परिकरों को भी कल्पित उपदेश देकर दासादि लिखने के लिये प्रोत्साहित ही करते रहते हैं, जिससे सनातनपरम्परा विकृत होकर विनष्ट हो जायगी; इसमें सन्देह नहीं । मन्वादि धर्मशास्त्रकारों ने ब्राह्मणादि वर्णक्रम से शर्मा, वर्मा, गुप्त और दास का विधान निश्चित किया है । अपना पारम्परिक परिचय मिटाये बिना भी भगवान् का दास बनने में आपत्ति नहीं । आज के सुधरे विकसित बाबूलोगों के लिये तो ये सभी बातें पुरानी हो ही गई हैं ! अस्तु.....

जातिवाले सूत में भी अस्पृश्यता नहीं रहती । उनका कार्य तो ''सूतानामश्वसारथ्यम्'' (मनुस्मृति १०।४७) अश्वयुक्त वाहन का सारथि होना है । जाति से सूत सञ्जय भी धृतराष्ट्र का रथ चलाते थे,

परन्तु कहीं भी उसे अस्पृश्य नहीं कहा गया । सूतजाति से प्रसिद्ध हुए कर्ण (यद्यपि बाद में यह भ्रम समाप्त हो गया था) को भी कहीं अस्पृश्य नहीं कहा गया । परन्तु पौराणिक सूतजी तो अग्निज होने के कारण ब्राह्मण थे, सूतजाति वाले सूत नहीं । हरिवंशपुराण के अनुसार ही ब्रह्मपुराण (४।६०-६१) में भी सूतजी की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार से है, यथा-

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे । सूतः सुत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः । पृथोः स्तवार्थे तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभिः ॥

ब्रह्मपुराण के इस स्थल पर नीलकण्ठ ने- ''सुत्यां- सोमाभिषवकाले, अभिषवः- सोमवल्ल्याः कण्डनं रसनिष्कासनार्थम्'' यह टीका की है । सोमरस निकालने के समय यज्ञकुण्ड से सूतजी की उत्पत्ति हुई ।

कल्याण विभाग वाले हरिवंश एवं नानार्थार्णवसंक्षेपकोश में 'सूत्यायां' पाठ है, पर वहाँ का भी अर्थ यही है कि पुष्करतीर्थ में सम्पादित होनेवाले पृथुकर्तृक पितामहदैवत्य यज्ञ में सोमनिष्पत्ति के दिन सोमाभिषव करने के समय महाबुद्धिमान् सूतजी की उत्पत्ति हुई । अन्य प्रतियों के हरिवंश या वायुपुराण में 'सूत्यायां' पाठ न होकर 'सुत्यायां' है; अतः सूतजातीया स्त्री भी अर्थ नहीं । यदि ऐसा होता तो जातिवाचक ङीषन्त 'सूती' शब्द का 'ङि' में 'सूत्यां' यह पाठ होता, 'सूत्यायां' नहीं । एक पाणिनीय सूत्र ''क्रौड्यादिभ्यश्च'' (४।१।८०) से 'सूत्या' शब्द भी बनता है, पर उसका अर्थ 'प्राप्तयौवना' होता है; बालमनोरमा टीकाकार का भी अभीष्ट अर्थ यही है ।

'सुत्या' शब्द पाणिन्यष्टाध्यायी के 'संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः'' (३।३।९९) इस सूत्र से 'षुञ्' धातु को संज्ञा में 'क्यप्' और 'तुक्' करने पर बनता है, पुनः स्त्रीत्वविवक्षा में 'टाप्' होकर रूप सिद्ध हुआ । सिद्धान्तकौमुदी में उसका अर्थ 'अभिषव यानी सोमयज्ञ' किया है । अमरकोश में भी ''सुत्याभिषवं सवनं च सा'' (२।२।४७) से उपर्युक्त अर्थ का ही समर्थन किया गया है । अतः 'सूत्या' शब्द तथा 'सूतजातीय' यह अर्थ यहाँ नहीं होगा । तब पौराणिक सूतजी सूतजाति के सिद्ध नहीं हो सकते । पुनः अग्निपुराण में- ''वक्ता वेदादिशास्त्राणां त्रिकालामलतत्त्ववित् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन नैमिषारण्यमागमत् ॥'' सूतजी को त्रिकालज्ञ, अमल, धर्मज्ञ, वेदादिशास्त्रों का प्रवक्ता तथा स्पष्टरूप से ब्राह्मण भी कहा गया है । कूर्मपुराण में-

नियोगाद्ब्रह्मणः सार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसः । वेणपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे ॥
सूतः पौराणिको जज्ञे मायारूपः स्वयं हरिः । प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्म्मज्ञो गुणवत्सलः ॥
ब्रह्मणः पौष्करे यज्ञे सूत्याहे वितते सति । पृषदाज्यात्समुत्पन्नः सूतः पौराणिको द्विजः ॥

पुष्कर के ब्रह्मयज्ञ में सोमरस निकालने के दिन 'पृषदाज्य' यानी दधि-घृत से पौराणिक ब्राह्मण सूतजी उत्पन्न हुए थे । स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तरखण्ड १।३ में भी सूतजी को- ''तन्मन्त्राणां च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम ।'' मन्त्रमाहात्म्यविद् द्विजसत्तम यानी ब्राह्मणश्रेष्ठ कहा गया है । अतः प्रतिलोमज का वेदवक्तृत्व शास्त्रतः सिद्ध नहीं होता है । ब्रह्मपुराण १।१७ में मुनियों ने सूतजी से कहा है-

न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदे शास्त्रे च भारते । पुराणे मोक्षशास्त्रे च सर्वज्ञोऽसि महामते ॥

वेद, धर्मशास्त्र, महाभारत, पुराण, वेदान्तदर्शन आदि शास्त्रों के आप सर्वज्ञ हैं । द्विजेतर एवं प्रतिलोमज आदि वर्णसङ्कर का शास्त्रतः वेदाधिकार सिद्ध नहीं होता । जातिभास्कर पृष्ठ २८१ में लिखा है- ''पौराणिक सूतजी अग्निकुण्ड से उत्पन्न हैं और सारथ्यकर्मा सूत सङ्करजाति से दूसरा है ।''

पुराणवक्ता सूतजी के विषय में पुराणप्रमाण का ही प्राधान्य होगा । प्रसिद्ध ग्रन्थ कौटिल्य अर्थशास्त्र में- ''वैश्यान्मागधवैदेहकौ क्षत्रियाब्राह्मण्योः'' (३।७।२७), ''क्षत्रियाद्ब्राह्मण्यां सूतः'' (३।७।३०) आदि...

इन सूत आदि सङ्करों का वर्णन करते हुए कहा है कि- 'क्षत्रिय से ब्राह्मणी में सूत होता है' । इस सङ्कर सूत का वर्णन करके पुनः ३।१।१७ में पौराणिक सूतजी के विषय में कहा है- ''पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषः'' अर्थात् पुराण में जो सूत कहा है, वह प्रतिलोमज सूत से तथा पुराणप्रोक्त मागध भी सङ्कर मागध से भिन्न है । इनमें पौराणिक सूत ब्राह्मणों में श्रेष्ठ है और मागध क्षत्रियों में श्रेष्ठ है । इससे बढ़कर पौराणिक सूतजी के ब्राह्मणत्व में क्या प्रमाण हो सकता है ? इसपर महामहोपाध्याय पण्डित गणपतिशास्त्री ने जो टीका लिखी है, वह इस प्रकार है-

''पृथुचक्रवर्तियज्ञीयभूम्युत्पन्नस्य पौराणिकस्य सूताख्यस्य मागधाख्यस्य च पृथुस्तोत्रविधायिनः प्रतिलोमजत्वशङ्काप्राप्तिं मनसि कुर्वन् तां परिहरति, 'पौराणिकस्त्वन्यः सूतः' इत्यादि । अस्यार्थः- पुराणप्रवक्ता रोमहर्षणापरनामा यः सूतः सः अन्यः, उक्तात्प्रतिलोमजसूताद्भिन्नः, यस्तत्सहपठितः पुराणेषु मागधो नाम, स च प्रतिलोमजमागधाद्भिन्नः । ब्रह्मक्षत्राद्विशेषतः- विशेषेण युक्तः । सूतो ब्राह्मणाद्विशिष्टः- उत्कृष्टः । मागधः क्षत्रियाद्विशिष्ट इति । एतच्च तथ्यम्, यतः- ''तस्यैव जातमात्रस्य यज्ञे पैतामहे शुभे । सूतः सुत्यां (यज्ञाभिषवभूमौ) समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ।। तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।'' इति विष्णुपुराणप्रथमांशतृतीयाध्याये ।

अर्थात् चक्रवर्ती राजा पृथु की यज्ञीयभूमि में उत्पन्न पौराणिक सूत प्रतिलोमज है- इस शङ्का को मन में रखकर अर्थशास्त्रकार श्रीकौटिल्यजी उसका प्रत्युत्तर देते हैं कि पुराणप्रवक्ता सूत- जिसका दूसरा नाम रोमहर्षण था, वह पहले कहे हुए प्रतिलोमज सङ्कर सूत से- जो क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न होता है, उससे भिन्न है । इस प्रकार उसके साथ पुराण में पढ़ा हुआ मागध भी प्रतिलोमज मागध से भिन्न ही होता है । उनमें पौराणिक सूत श्रेष्ठ ब्राह्मण है और पौराणिक मागध श्रेष्ठ क्षत्रिय है । यह श्रीविष्णुपुराण के प्रथमांश के तृतीय अध्याय में स्पष्ट है । इसी प्रकार वहाँ अग्निपुराण तथा कूर्मपुराण के एतादृश वचन उपस्थित करके कहा है- ''इति व्यासशिष्यपौराणिकसूतस्य अयोनित एवोत्पत्तिः प्रतिलोमजसूत-विलक्षणा कथ्यते, तथा द्विजत्वं विष्णवंशसम्भूतत्वं च, तथैव मागधस्यापि तत्सहपठितस्य अयोनिजत्वम् ।''

इस प्रकार व्यास के शिष्य पौराणिक सूत की अयोनिज उत्पत्ति एवं उसका श्रेष्ठ ब्राह्मण होना तथा विष्णु के अंश से उत्पन्न होना कहा है, वैसे ही उसके साथ पठित मागध भी अयोनिज एवं श्रेष्ठ क्षत्रिय है । भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व के २।२४।३ में शौनक आदि ऋषियों ने सूतजी को ''सत्यं ब्रह्मन् वदोपायं नराणां कीर्त्तिकारकम्'' में ब्राह्मण के पर्यायवाचक 'ब्रह्मन्' शब्द से सम्बोधित किया है । इस प्रकार महाभारत अनुशासन पर्व के १६५।३६ में- ''देवताऽनन्तरं विद्वान् तपःसिद्धान् तपोऽधिकान् । कीर्त्तितान् कीर्त्तयिष्यामि सर्वपापविमोचनान् ।।'' महाभारत अनुशासनपर्व ४७।४७ में वर्णित इन ब्राह्मणों के नामकीर्तन में- ''लोमशो नाचिकेतश्च लोमहर्षण एव च । ऋषिरुग्रश्रवाश्चैव भार्गवश्च्यवनस्तथा ।।''

यहाँ लोमहर्षण और उग्रश्रवा को- जिनको सूत कहा जाता है, उन्हें ब्राह्मण ही बताया गया है । पुनः कूर्मपुराण में भी यही कहा गया है कि-

त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः । इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ।।
त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितते सति । सम्भूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः ।।

हे महाबुद्धिवाले सूत ! तुम्हारे द्वारा इतिहास-पुराणादि की प्राप्ति के लिये ब्रह्मविद्वरिष्ठ भगवान् व्यास की महती सेवा की गई है । तुम ब्रह्मा के यज्ञ में जबकि सोमरस निकाला जा रहा था; तब संहिता कहने के लिये उत्पन्न हुए थे । तुम अपने अंश से विष्णु या कृष्ण हो, इस श्लोक में ''भगवान् ब्रह्मवित्तमः'' का अर्थ यह भी लिखा है कि हे सूत ! आप साक्षात् भगवान् एवं ब्रह्मविद्वरिष्ठ हैं ।

सूतजी भगवान् विष्णु के अवतार हैं, ऐसे महनीय व्यक्ति को प्रतिलोमज वर्णसङ्कर कहना भयङ्कर अपराध है । आज भी कथावाचकों को व्यासजी या सूतजी कहने की परम्परा है, एतावता वे सभी प्रतिलोमज नहीं हो सकते । अग्निकुण्ड से द्रौपदी, धृष्टद्युम्न, अङ्गिरा आदि की उत्पत्ति तो प्रसिद्ध ही है । त्रेता में महाराज दशरथ के मन्त्री सुमन्त्र उनका रथ भी चलाया करते थे, इस सारथ्यकर्ममात्र से सुमन्त्र की सूतजाति सिद्ध नहीं हो सकती।

यदि कर्मणा ऐसी व्यवस्था मान ली जाय तो भगवान् श्रीकृष्ण भी महाभारत में अर्जुन के रथ को चलाते थे, इससे वे सूतजाति वाले नहीं हो गये; उन्हें तो 'पार्थसारथि' कहा ही जाता है । यद्यपि कुछ सुधारकों ने ऐसा कहने का दुःसाहस कर भी दिया है । वस्तुतः ''सूतो मातलिकः'' (अमरकोश १।१।४५) मातलि को इन्द्र का सूत कहा है, परन्तु उन्हें जातिवाला सूत कहीं भी नहीं कहा गया है । आज भी वाहन चलानेवाले सभी प्रतिलोमज सूत नहीं कहे जा सकते ।

शास्त्रों में एक अन्य प्रकार के सूत की भी चर्चा है; जो होता तो है ब्राह्मण, पर प्रतिलोमजधर्मा होता है । जैसे उशना ने कहा है- ''मृषा ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् । जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः । वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥'' इसका अर्थ 'वीरमित्रोदय' के संस्कारप्रकाशान्तर्गत उपनयन संस्कार के अनुपनेय प्रकरण में आया है-

''ब्राह्मणकन्यायां मृषा विधिहीनेषु ऊढायाः समन्वयाज्जातः, अत्र शास्त्रे प्रतिलोमविधिः प्रतिलोमधर्मा द्विजो निर्दिष्टः । स च वेदानर्हः, तथाऽप्येषां स्मार्तानां धर्माणामनु- पश्चाद् ब्राह्मणं पुरस्कृत्य ब्राह्मणाभावे बोधकः- उपदेष्टा भवति । ततश्च विधिविकलविवाहो ब्राह्मणीजातस्य ब्राह्मणस्यैव सूतसंज्ञस्य प्रतिलोमधर्मस्य इदमुपनयनम्, न सूतजातेरिति न विरोधः ।'' (पृष्ठ ४०६)

अर्थात् ब्राह्मण की अवैध विवाहिता कन्या में ब्राह्मण से ही उत्पन्न हुआ ब्राह्मण प्रतिलोमधर्मवाला होता है । वह वेद पर तो अधिकार नहीं रखता; किन्तु यथोक्त ब्राह्मण का अभाव होने पर किसी ब्राह्मण को आगे करके स्मार्त्तधर्म का उपदेश कर सकता है । ऐसी ब्राह्मणी के पुत्र को भी सूत कहा जाता है और प्रतिलोमधर्मा होने पर भी इसी ब्राह्मण का उपनयन कर्म वैध है । सङ्करजाति वाले सूत का उपनयन और वेदाधिकार सर्वथा निषिद्ध है ।

पुराणों के अनुसार तो उन्हें वेदवक्ता भी कहा गया है । परन्तु वेदरूपी महासमुद्र में पूर्ण निष्णात नहीं होने से श्रीमद्भागवत १।४।१३ में- ''मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ।'' ऐसा कहा गया है, जिसका तात्पर्य है- ''छान्दसात्- वेदातिरिक्ते अन्यत्र वाचां विषये- अन्यशास्त्रे त्वां स्नातम्- निष्णातं मन्ये ।''

वेद से अतिरिक्त पुराणादिकों में आप अत्यन्त निष्णात हैं । यहाँ उनका वेद में पूर्ण पारङ्गत न होना ही अभिप्रेत अर्थ है, न कि अप्रविष्टि अथवा अनधिकारमूलक अप्रवेश । श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ महाविद्वान् श्रीवंशीधरजी ने तो विशेष रूपेण इसका स्पष्टीकरण किया है-

''इदं तु ब्राह्मणक्षत्रिययोर्बृहस्पतीन्द्रयोराहुतिदानसमये चरुवैपरीत्येन उपचारत उक्तम् । वस्तुतस्तु छन्दोभिर्वेदैः स्तुत इति छान्दसोऽग्निस्तम् अतति सातत्येन गच्छति प्राप्नोतीति हे छान्दसात् सूत । अनि अत्रेति पदच्छेदः । तथा चात्र वाचां विषये त्वां स्नातं मन्ये । कथम्भूतम् अनि । अ आदौ नि इत्यक्षरं यस्य तत् निष्णातमित्यर्थः । 'अ आदावधिक्षेपवर्जनामन्त्रणेषु च' इति कोशात् । 'ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातः सूत इत्यभिधीयते' इत्युक्तलक्षणो नायं सूतः किन्तु अग्निकुण्डसमुद्भूतः इति ।''

इस विशिष्ट व्याख्यान से श्रीसूतजी का पूर्ण वेदाधिकार भी सिद्ध हो जाता है । इसीलिये तो वे शौनकादि जैसे अतिशय प्रबुद्ध ब्राह्मणश्रोताओं को भी वेदोपनिषदों के सारभाग से उत्पन्न श्रीमद्भागवत के कथासार को सुनाने में प्रवृत्त भी हो सके ।

श्रीमद्भागवत १०।७८।२ की 'भावप्रदीपिका' टीका में भी सूतजी को ब्राह्मण ही बताया गया है; जैसे कि- ''प्रश्नः- ननु 'ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातः सूतः' इति स्मृतेस्तस्य विलोमजातीयत्वेन शूद्रत्वात् 'श्वचर्मणि यथा क्षीरमपेयं स्याद् द्विजातिभिः । तथा शूद्रमुखाच्छास्त्रं न श्रोतव्यं कदाचन ॥', 'विप्रो वक्ता सुधीः कार्यो विशुद्धोभयवंशजः । इतिहासपुराणानां विप्रान्यो धर्महानिकृत् ॥' महाभारतादि स्मृतेश्च कथमतीवविज्ञाः शौनकादयः साक्षाद्वेदरूपं श्रीमद्भागवतं शुश्रुवुः ?''

यानी ब्राह्मणी में क्षत्रिय से उत्पन्न हुआ सूतजाति का होता है, यह स्मृतियों का कथन है । तब प्रतिलोमज शूद्र होने के कारण- 'जैसे श्वानचर्म में रखा हुआ दूध द्विजों के लिये अपेय और अनुपयोगी होता है, वैसे ही शूद्र के मुख से सुना हुआ शास्त्र भी परम्परया सम्प्रदायविरोधेन उपयोग के योग्य नहीं होता । जो वेदादि शास्त्रों में निष्णात और वक्तृत्वगुण से सम्पन्न जन्मना ब्राह्मण हो तथा माता-पिता दोनों के कुल जिसके शुद्ध हों; उसी से पुराण-इतिहास का श्रवण करना चाहिये । ब्राह्मण से भिन्न वक्ता धर्महानि करनेवाला होता है' । इत्यादि महाभारतादि के कथन से अतिरिक्त अत्यन्त विद्वान् शौनकादि महर्षियों ने साक्षात् वेदस्वरूप श्रीमद्भागवत को प्रतिलोमज सूत शूद्र से कैसे सुना ?

इस प्रश्न का उत्तर टीकाकार ने इस प्रकार दिया है- ''नह्ययं जातिसूतः । अस्योत्पत्तिस्तु 'वैन्यस्य तु सुत्यायामभवत्सूतः' इत्यादि । 'अग्निकुण्डसमुद्भूतः सूतः' इति पुराणान्तराच्च रोमहर्षणो 'ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातः सूतः' इति जातिसूतो न, किन्तु 'अग्निजः', 'अस्य ब्रह्मासनं दत्तम्' (भा.१०।७८।३०) ब्रह्मासनार्हता त्वस्य ब्राह्मणसंकल्पादेव- 'अग्निर्वै ब्राह्मणः' इति श्रुतेरग्निजत्वेन ब्राह्मणत्वादेव । अन्यथा 'व्यासासनसमाक्रमे । धर्माणां श्रुतिगीतानामुपदेशे तथा द्विजः ॥' इति संहितोक्तिर्व्याकुप्येत । 'किञ्च ब्रह्मासनं वैशम्पायनहारीतशान्तव्रतमार्कण्डेयादि समानः, तत्सजातीय एवार्हति, न हीनः ।' न महान्तः शौनकादयो हीनात् परं रहस्यं जगृहुरिति वक्तुं शक्यम्; 'न हीनतः परमभ्याददीत' इति श्रुतेः । 'नीचादप्युत्तमा विद्या ग्राह्या' इति त्वापत्परं वृत्त्युपयोगिविद्यापरं वा ।''

यहाँ नीच का तात्पर्य स्ववर्णापेक्षया अपकृष्ट (अवर) इष्ट है; जैसे कि- उपनिषद् में कई ब्राह्मण क्षत्रियों से ब्रह्मविद्या सीखने गये, यहाँ नीच का शूद्र या अवर वर्ण इष्ट नहीं है- 'अत एव तद्वधाद् बलरामेण ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णमिति स्मर्यते ।'

अनेक प्रमाणानुसार पौराणिक सूतजी महाविद्वान् ब्राह्मण ही सिद्ध होते हैं । व्यासासन पर बैठने का शूद्र को शास्त्रीय अधिकार नहीं है, ऐसा करने से उसे चाण्डालत्व की प्राप्ति होती है । वेदोक्त धर्मो के उपदेश में भी ब्राह्मण ही अधिकारी हैं । एतदतिरिक्त वैशम्पायन, हारीत, मार्कण्डेयादि के समान तत्सदृश जातिवाला ही ब्रह्मासन पर बैठ सकता है, उनसे हीनवर्ण वाला नहीं बैठ सकता । महाविद्वान्

शौनक आदि ऋषियों ने कभी भी स्ववर्णहीन से परमरहस्य को ग्रहण करनेवाले नहीं बने । ऐसा जो कहा गया है कि 'नीच से भी उत्तम विद्या लेनी चाहिये' यह वचन केवल आपत्तिकालपरक है अथवा आजीविकामात्र की उपयोगिनी भौतिक विद्या के लिये ही ऐसा कहा है । इसीलिये तो उस सूत के वध से श्रीबलरामजी को ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ा, यह सर्वविदित है ।

वर्त्तमान में शास्त्रों का नाम से सुख-सुविधा प्राप्त करनेवाले कितने ही अनधिकारी वक्ता शास्त्रीय परम्पराओं का असम्मान करते हुए धर्मोपदेश में प्रवृत्त होकर अनभिज्ञ श्रोता को मोह में डाल रहे हैं, जो परिणामतः उभयपक्ष के लिये हानिकर है । सम्भवतः उन्हें चार्वाकों की तरह प्रत्यक्ष से इतर परलोक आदि के अस्तित्व का आभासमात्र भी नहीं है । कदाचित् कलि के प्रबल प्रभाव से शास्त्रतः अनधिकारियों की ऐसी लौकिक मति हो कि हम भी व्यासासन पर बैठकर धर्मोपदेश करने में सक्षम हैं, तथापि वे शास्त्ररूपी संविधान से अनधिकृत होने के कारण ऐसा करते हैं तो 'उभय लोक निज हाथ नसावहिं' के ही भागी होते हैं । ब्रह्मसूत्र अपशूद्राधिकरण- ''शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि' (१।३।३४) में श्रीशङ्कराचार्य आदि भाष्यकारों ने लिखा है- ''न शूद्रस्याधिकारः वेदाध्ययनाभावात् । अधीतवेदो हि विदितवेदार्थो वेदार्थेष्वधिक्रियते । न च शूद्रस्य वेदाध्ययनमस्ति, उपनयनपूर्वकत्वाद् वेदाध्ययनस्योपनयनस्य च वर्णत्रयविषयत्वात् । यत्तु अर्थित्वम् न तदसति सामर्थ्ये अधिकारकारणं भवति । सामर्थ्यमपि लौकिकं न केवलमधिकारकारणं भवति शास्त्रीयेऽर्थे शास्त्रीयस्य सामर्थ्यस्य अपेक्षिततत्वात्, शास्त्रीयस्य च सामर्थ्यस्य अध्ययननिराकरणेन निराकृतत्वात् ।''

धर्माधर्म एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निर्णय में केवल शास्त्र ही प्रमाण होता है, अतः अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि के लिये इसका अपलाप नहीं करना चाहिये; अन्यथा धर्महानि निश्चित है । सदैव प्रत्यवाय से बचने का प्रयास करना चाहिये, यही चतुरता है । वर्णाश्रम के आचार से सम्पन्न व्यक्ति वर्णाश्रमधर्मानुसार ही भगवान् श्रीहरि की आराधना करके भगवान् को शीघ्र प्रसन्न कर सकते हैं, उनके तोष का अन्य सुलभ कारण नहीं है- ''वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् । विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोषकारणम् ॥'' (वि.पु.३।८।९)

यद्यपि अनेक अप्रामाणिक द्विज एवं विशेषतः द्विजेतर कवियों ने स्वसम्प्रदायप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थ शास्त्रोक्त वर्णाश्रम का अपमान करके कुछ मनगढ़न्त कविताएँ और कहानियाँ रच डाली हैं, जिनसे सनातनपरम्परा का तीव्रगति से अधःपतन हो रहा है । अतिशय दुःखद तो यह है कि वर्णाश्रम को मानने का उद्घोष करनेवाले भी कतिपय उपदेशक इन्हीं अप्रामाणिक अशास्त्रीय सन्देशों को गाने और प्रचारित करने में गर्व का अनुभव करते रहते हैं । वैदिक सनातनपरम्परा कैसे बचेगी ? सावधान- ''धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।''

वस्तुतः भगवान् के किसी भी नाम के उच्चारण में सबका अधिकार है । अतः विधिनिषेध से विरहित होते हुए भी भगवन्नाम का आश्रय लेकर इहलोक और परलोक को सुधार लेना बुद्धिमानी है । द्रव्यादि के बल पर शास्त्रों का विकृत प्रकाशन कर-करा देना भी दण्डनीय अपराध है, गोवंशमहिमामृतम् के अनुसार- ''शास्त्रे न योजयेत्किञ्चिन्न किञ्चित्खण्डयेन्नरः । हरेः शरीरवैकल्याज्जायते धर्मसंक्षयः ॥'' शास्त्रों में स्वकल्पित बातें मिला देना- भगवद्विग्रह में काँटे चुभाने जैसा है एवं कुछ हटा देना भगवान् को अङ्गहीन कर देने जैसा है । दिगिति शम् .....